शोध मंथन Vol. XIII No.IV Oct.-Dec. 2022 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

चित्तशुद्धि में साधन–चतुष्टय का योगदान (अद्वैत वेदान्त के सन्दर्भ में)

प्राप्तिः 13.12.2022
स्वीकृतः 26.12.2022

99

संगीता राठौर
शोधार्थी, संस्कृत विभाग
बरेली कॉलेज, बरेली
ईमेलः

वेदान्त ज्ञान मानव जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु दर्शन के उस रूप में प्रतिष्ठित है जहाँ शिक्षा अपने विकास में अमूल्य योगदान रखती है जो आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक शिक्षाओं पर पूर्ण रूप से खरा उतरता है। अतः वेदान्त का ज्ञान वह अक्षय कलश है जो युगों तक अपने ज्ञान से संसार के त्रिविध दुःखों का समूल नाश करने में समर्थ है जैसा कि आचार्यशंकर ने कहा है :–

वेदान्तार्थविचारेण जायते ज्ञानमुत्तमम्।
तेनात्यन्ति कसंसारदुःखनाशो भवत्यनु।। (1)

अर्थात् वेदान्त के अर्थ पर समुचित चिन्तन–मनन करने से सर्वोच्च तथा सर्वोत्तम ज्ञान उदित होता है, जिसके द्वारा संसार जनित सारे दुःखों का समूल नाश हो जाता है क्योंकि वेदान्त के ज्ञान के अतिरिक्त कोई अन्य ज्ञान साधन के रूप में सक्षम नहीं है। इसलिये उपनिषदों को मोक्षदायिनी कहा गया है। वेदों के अन्तिम भाग उपनिषदों को ही वेदान्त कहते हैं।

उपनिषदों का ज्ञान यह बताता है कि प्रत्येक जीव में आत्मा अव्यक्त रूप से निवास करती है जिसे परब्रह्म या परमात्मा कहते हैं। वही भोग के लिए सब कुछ इस सृष्टि को देती है जैसा कि ईशावास्योपनिषद में भी कहा गया है :–

ऊँ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किळच जगत्यां जगत।। (2)

अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत ईश्वर से व्याप्त है। गीता में भी श्री कृष्ण ने जीवों में स्वयं को ही स्थित माना है –

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च सर्वभूतानान्त एव च।। (3)

अर्थात् समस्त जीवों के हृदयों में स्थित मैं परम–आत्मा हूँ, मैं ही समस्त जीवों का आदि, मध्य और अन्त हूँ।

वेदान्त इसी भावना को वशीभूत करके ब्रह्म भाव को प्राप्त कराना ही मानव जीवन का लक्ष्य निर्धारित करता है। जिसमें जीव अनेक उपायों जैसे निष्काम कर्म, उपासना, मन संयम, अथवा ज्ञान इन सभी के द्वारा ब्रह्मभाव से ब्रह्म के समीपता का आभास एवं प्राप्ति कराने में सक्षम है। इसीलिए आचार्यशंकर ने अद्वैत वेदान्त दर्शन का अमूल सिद्धान्त दिया– ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।

अर्थात् यह संसार एक प्रक्षेप या असत्य है। उसकी वास्तविक सत्ता नहीं है। एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है, जिसको श्रुतियां प्रमाणित करती हैं इसी आधार पर आचार्य शंकर ने जगत के मिथ्यात्व और ब्रह्म की सत्यता का प्रतिपादन किया है। जैसा कि कहा है–

वेदान्त सिद्धान्त निरूक्तिरेषा ब्रह्मैव जीवः सकलं जगच्च।
अखण्डरुपस्थितिरेव मोक्षो ब्रह्माद्वितीये श्रतयः प्रमाणय।। (4)

अर्थात् जब मनुष्य को अपने अज्ञान का परिपूर्ण बोध होता है तभी ज्ञान का उदय उसकी अनुभूति के रूप में प्रकट होता है। यह अनुभूति ही ब्रह्मसाक्षात्कार का माध्यम होती है। इसी अनुभूति की प्राप्ति के लिये वेदान्त दर्शन निष्पाप चित्त, निष्पाप कर्म को जीवन में सबसे अधिक महत्व देता है। क्योंकि चित्त की शुद्धि ही आत्मज्ञान या तत्त्वज्ञान के लिये साधन–चतुष्टय का मार्ग दिखाती है। जिसका वर्णन विवेक चूड़ामणि में आचार्य शंकर द्वारा बताया गया है–

विवेकिनो विरक्तस्य शमादिगुणशालिनः।
मुमुक्षोरेव हि ब्रह्मजिज्ञासा योग्यता मता।। (5)

अर्थात् आत्मज्ञान उसी को प्राप्त होता है जिसमें विवेक, वैराग्य, शमदमादिगुण हो तथा मुक्ति की उत्कट इच्छा हो। इन्हीं गुणों को ऋषियों ने चार गुणों वाली साधना बतायी है जिसे वेदान्त 'साधन–चतुष्टय' कहता है।

वेदान्त के अनुसार विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान) मुमुक्षुत्व। इनके अभाव में साधक योगविद्या नहीं प्राप्त कर सकता है। किसी भी शास्त्र के अध्ययन में साधन चतुष्टय का ज्ञान कैवल्य मार्ग को जानने के लिये बहुत आवश्यक धर्म है। साधन चतुष्ट्य सम्पन्न प्रमाता ही वेदान्त विद्या का अधिकारी होता है।

'विवेक' जो आचार्यशंकर ने साधना के लिये प्रथम ज्ञान माना है। विवेक का अर्थ है, सत् और असत्, नित्य और अनित्य के बीच में अन्तर को जानने की योग्यता रखना, उसी को विवेक कहते हैं। जैसा कि वेदान्तसार में कहा है–

नित्यानित्य वस्तु विवेकस्तावद् ब्रह्मैव नित्यं वस्तु
ततोऽन्यदखिलमनित्यमिति विवेचनम्। (6)

अर्थात् ब्रह्म ही नित्य वस्तु है उसके अतिरिक्त सम्पूर्ण जगत अनित्य है। चित्त की शुद्धि विवेक का स्थान साधना को लक्ष्य तक पहुँचाने में अमूल्य योगदान देता है। विवेक ही यह तय करता है कि प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है बाह्य एवं अन्तः प्रकृति को वशीभूत करके आत्मा के इस ब्रह्म भाव को व्यक्त करना ही विवेक का चरम लक्ष्य है। जैसा कि कहा है–

'अव्यक्त लेशाज्ञानाच्छादितपारमार्थिक जीवस्य तत्त्वामस्यादिवाक्यानि
ब्रह्मणैकतां जनुर्नेतरयोर्व्यावहारिक प्रातिभासिकयोः। (7)

अर्थात् पारमार्थिक जीव के ऊपर अव्यक्त अंश रूप अज्ञान आच्छादित है; वह भी ब्रह्म का ही अंश है। 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों से ब्रह्म की एकता प्रकट होती है परन्तु जीव की व्यावाहारिक और प्रतिभासिक सत्ता ब्रह्म से इस प्रकार की एकता नहीं रखती, क्योंकि चित्त की वह अवस्था 'तत्त्वमसि' की अवस्था से बहुत दूर होती है। चित्त की शुद्धि में ब्रह्म का यह भाव आना साधक की साधना का परम फल है। जबकि ईश्वर की उपाधि माया है और जीव की उपाधि अविद्या है इसी बात को पैंगलोपनिषद् और श्वेताश्वरोपनिषद् दोनों ही प्रमाणित करते हैं। अविद्या का विश्लेषण

करना इसलिये आवश्यक है, क्योंकि जीव इसी अविद्या से मोहित होकर बन्धनों में पड़ता है और जब तक चित्त अविद्या से युक्त रहता है तब तक वह ब्रह्म के बोध से बहुत दूर रहता है। इसीलिये 'तत्त्वमसि' आदि बोध महावाक्य कहे जाते हैं। इस महावाक्य तक पहुँचने में साधक का विवेक और चित्त शुद्धि उसे संसार से निर्लिप्त करती है। इसीलिये साधना चित्तशुद्धि की भित्ति पर ही टिकी है। अतः इस आत्म और अनात्म तत्त्व के विवेक विवेचन से जो ज्ञानाग्नि से ज्वाला के रूप में उत्पन्न होती है वही अज्ञान जनित परिणामों को समूल भस्म कर देती है। इसी बात को विवेक चूड़ामणि में आचार्यशंकर ने कहा है–

तयोर्विवेकोदितबोधवह्निवरज्ञान कार्य प्रदहेत्समूलन।। (8)

ब्रह्म की समीपता में और चित्त शुद्धि के योगदान में वैराग्य भी साधक के लिये महत्वपूर्ण स्थान रखता है। क्योंकि वैराग्य विवेक के ही अधीन है वैराग्य का अर्थ संसार का त्याग नहीं है अपितु संसार में रहकर आसक्ति से रहित होकर और विषयों के प्रति उदासीन होकर ही मायात्मिका शक्ति को परास्त किया जा सकता है ब्रह्म ज्ञान का यह द्वार भी कहा जाता है। क्योंकि विषयों के प्रति आसक्ति समाप्त हो जाती है। जैसा कि आचार्यशंकर ने कहा है–

विषयाख्यग्रहो येन सुविरकत्यसिना हृतः।
स गच्छति भवाम्भोद्येः पारं प्रत्यूहवर्जितः।। (9)

अर्थात् जिसने दृढ़ वैराग रूपी तलवार से विषय नामक मगर को मार डाला है, वह संसार रूपी सागर को निर्विघ्न पार कर जाता है। वैराग्य ही योग को भी साधने में सहायक होता है। क्षुरिकोपनिषद में इन्हीं विषयों रूपी सूत्रों को काटने की बात कही गई है–

प्राणायामसुतीक्ष्णेन मात्राधारेण योगवित्।
वैराग्योपलघृष्टेन छित्त्वा तं तु न बध्यते।। (10)

अर्थात् वैराग्य रूपी पत्थर पर ऊँकार युक्त प्राणायाम से घिस कर तीक्ष्ण धारण रूपी छुरी से संसार के विषयादि सूत्रों को काटने वाले योगी को सांसारिक बंधनों में नहीं बाँधा जा सकता है।

आचार्यशंकर ने वैराग्य का बड़े ही सुन्दर और सूक्ष्म ढंग से वर्णन करते हुए कहा है कि जो वैरागी होता है वही आन्तरिक और बाह्य भोगों को त्यागने की इच्छा रखता है। वैराग्य के दो अर्थ हैं– (1) कामना का पूर्ण त्याग अर्थात् सांसारिक विषयों के प्रति अनासक्ति, (2) मोक्षप्राप्ति हेतु विशेष आसक्ति। जब मनुष्य में वैराग्य भाव आता है तभी वह त्याग करके मोक्ष का अधिकारी बनने का प्रयास कर सकता है, क्योंकि तभी समाधि का भी लाभ प्राप्त होता है और वह सभी प्राणियों में ब्रह्म का अभेद दर्शन करता है वैराग्य के बिना यह संभव नहीं है। आचार्यशंकर ने इसे सबसे बड़ा सुख माना है–

वैराग्यान्न परं सुखस्य जनकं पश्यामि वश्यात्मनन्स्तच्चेच्छुद्धतरात्मबोध सहितमं स्वाराज्य साम्राज्यधुक्।
एतद्द्वारमजस्त्रमुक्ति युवतेर्यस्मात्त्वमस्मात्परं सर्वत्रास्पृह्यासदात्मनि सदा प्रज्ञा कुरु श्रेयसे।।(11)

चित्त शोधन की प्रक्रिया में ब्रह्म से सायुज्य का अनुभव करने में षट्सम्पत्तियाँ साधक के जीवन में विशिष्ट स्थान रखती हैं। साधक विवेक और वैराग्य की सीढ़ी पर चढ़ कर शम, दमादि विशिष्ट व्यापार की ओर अग्रसर होता है। षट्सम्पत्तियों में 'शम' का प्रथम स्थान है। 'शम' का अर्थ है– सांसारिक विषयों से मन को रोकना। यह एक सहज प्रक्रिया नहीं है। मन की चंचलता साधक को विचलित करती है, जिसके लिये आवश्यक है कि साधक ऐहिक और पारलौकिक सभी विषयों से

दूर हो, उसका राग समाप्त हो, वासनाओं का शमन हो। आचार्यशंकर काम, क्रोध को योगी का सबसे बड़ा विकार मानते हैं। इसीलिये स्पष्ट कहते हैं कि चित्त का अपने लक्ष्य में स्थिर होना ही शम है, मन की शान्ति शम् है इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना 'शम' है। जैसा कि आचार्य शंकर ने आत्मात्तविवेक में भी कहा है–

शमो नाम अन्तरिन्द्रियनिग्रह।[12]

यहाँ अन्तरिन्द्रिय मन को कहा गया है। इन्द्रियसंयम की शिक्षा देते हुये योगवशिष्ठ में कहा गया है–

अवान्तरनिपातीनि स्वारुढानि मनोरथम।
पौरुषेणेन्द्रियाण्याशु संयमरू समतां नय।।[13]

मनोमय रथ पर चढ़कर विषयों की ओर दौड़ने वाली इन्द्रियाँ वश में न होने के कारण बीच में ही पतन के गर्त में गिराने वाली है, अतः प्रबल पुरूषार्थ से इन्हें शीघ्र अपने वश में करके मन को समता में ले जाइये।

षट्सम्पत्तियों में दम का दूसरा स्थान है जो चित्त शुद्धि में सहायक होता है। दम का अर्थ है– अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेना। वेदान्तसार में कहा गया है– ब्रह्म ज्ञान के साधन रूप श्रवण, मनन और निदिध्यासन के अतिरिक्त विषयों से बाह्य इन्द्रियों को हटा लेना ही 'दम' कहलाता है। चित्त शुद्धि में शम और दम का पूर्णतया नियन्त्रण शान्त मन से ही होता है। इन्द्रियाँ कर्मशील होती हैं। इसीलिये आध्यात्म ज्ञान के मार्ग में इन्द्रियों पर नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है। इससे विकारों का उत्पन्न होना रूक जाता है और बुद्धि भी स्थिर होकर लक्ष्य को साधती है। इन्द्रियों से तात्पर्य ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ दोनों से है। परमात्मतत्त्व की प्राप्ति में समस्त इन्द्रियाँ समर्थ नहीं होती हैं। जैसा कि कठरुद्रोपनिषद में कहा है–

व्यावृत्तानि परं प्राप्तुं न समर्थानि तानि तु।[14]

चित्त शोधन में उपरति और तितिक्षा का भी एक साधक के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। शम, दम के बाद साधक बाह्य विषयों के प्रति किसी भी प्रकार की बाधा का अनुभव नहीं करता है। अर्थात् बाह्य विषयों से उसकी इन्द्रियों का कोई सम्पर्क नहीं रह जाता। यह मन का व्यापार 'उपरति' कहलाता है। जिसका सीधा अर्थ है विषयों से विरत होना और इस व्यापार का फल है आत्मानन्द का अनुभव होना। इस प्रकार साधक अपने चित्त को शान्त रखता हुआ इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण कर लेता है। यहीं से सन्यास का जन्म होता है और अमृतत्त्व की प्राप्ति के लिये उत्कृष्ट भावना भी प्रकट हो जाती है। इस प्रकार उपरति की सफल साधना के बाद साधक तितिक्षा नामक मानसिक शक्ति का परिचय देता है। इसमें साधक शीत, उष्णादि को तो सहता ही है, दूसरों के अपराधों को भी सहन कर लेता है। उपरति और तितिक्षा शरीर के धर्म हैं। मन से नियन्त्रित होने के कारण साधक को लक्ष्य तक पहुँचाने में महती भूमिका निभाते हैं। शुद्ध चित्त में धैर्य और सहन शक्ति जैसे गुणों का समावेश हो जाता है।

चित्त शोधन की प्रक्रिया में साधक ब्रह्म सायुज्य के लिये मानसिक रूप से स्वयं को तैयार करता हुआ श्रद्धा और समाधान की ओर अग्रसर हो जाता है। आत्मज्ञान की प्राप्ति में गुरू के उपदेश पर 'श्रद्धा' रखना, वेदान्त वाक्यों में विश्वास रखना और विवेकपूर्ण ढंग से व्यापार करना ही श्रद्धा है। तैत्तिरीयोपनिषद् में श्रद्धा को विज्ञानमय आत्मा (पुरूष) का सिर कहा है,[15] क्योंकि

निश्चयात्मिका बुद्धि से पुरूष को अपने कर्म में श्रद्धा ही उत्पन्न करनी होती है। यह सम्पूर्ण कर्मों में प्रथम है और यथार्थ ज्ञान में समर्थ है। अन्तःकरण को भी उसी भावना का बना देती है। एकनिष्ठ श्रद्धा से ब्रह्म में लगा हुआ पुरूष ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है। सामवेद में कहा है– श्रद्धा माता।[16] अर्थात् श्रद्धा ही माता होती है। श्रद्धा से विहीन मनुष्य कभी भी आत्म ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है। श्रद्धा के बाद समाधान षट्सम्पत्ति का अन्तिम गुण है। समाधान का अर्थ होता है। चित्त को श्रवणादि एवं उसके अनुरूप विषयों में लगाने को समाधान या समाधि कहते हैं। अर्थात् अस्थिर चित्त से आत्मा के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार असम्भव है। इसलिये बल पूर्वक चित्त का शोधन करना चाहिये।

आचार्य शंकर ने विवेक चूड़ामणि में 'समाधान' को परिभाषित करते हुये कहा है–

सर्वदा स्थापनं बुद्धे शुद्धे ब्रह्मणि सर्वथा।
तत्समाधानभित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम्।।[17]

अर्थात् अपनी बुद्धि को सब प्रकार से शुद्ध ब्रह्म में निरन्तर स्थिर रखना समाधान कहलाता है। चित्त की इच्छा पूर्ति का नाम 'समाधान' नहीं है।

साधन–चतुष्टय की सम्पूर्णता आचार्य शंकर के अनुसार 'मुमुक्षु' में स्थिर है उनके अनुसार जन्म–मरण के बन्धन से छूट कर उस परम ब्रह्म में लीन होने की इच्छा 'मुमुक्षा' कहलाती है। अज्ञान और अहंकार का त्याग करके षट्सम्पत्तियों को चरितार्थ करना और ब्रह्म का सायुज्य प्राप्त करना ही वेदान्त का लक्ष्य है। जिसे चित्त शोधन से ही प्राप्त किया जा सकता है। वेदान्त सार में कहा गया है–

प्रशान्त चित्ताय चितेन्द्रियाय प्रहीणदोषाय यथोक्तकारिणे।
गुणान्वितायानुगताय सर्वदा प्रदेयमेतत्सततं मुमुक्षुवे।। [18]

अर्थात् शान्त–चित्त, इन्द्रियों को वश में करने वाले, विनष्ट पाप वाले, यथाविधि आचरण करने वाले (विवेक, वैराग्य, शमादि) गुणों से अलंकृत तथा गुरू के अनुगामी मोक्षाभिलाषी व्यक्ति को सर्वदा यह सम्पूर्ण आत्म ज्ञान देना चाहिए।

सन्दर्भ

1. श्रीमदाद्यशइराचार्य, विवेक चूड़ामणि. (2010). श्लोक ।।47।।, व्याख्याकार–स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी संस्करण : प्रथम.
2. ईषावस्योपनिषद मंत्र. **1.** गीता प्रेसः गोरखपुर.
3. श्रीमद्भगवद्गीता. **10/20.** गीता प्रेसः गोरखपुर.
4. विवेक, चूड़ामणि. श्लोक **479.**
5. विवेक चूड़ामणि. श्लोक **17.**
6. वेदान्तसार (सदानन्द). व्याख्याकार–कृष्ण कुमार. साहित्य भवनः मेरठ. पृष्ठ **52.**
7. श्रीमदाद्यशइराचार्य आत्मानात्मविवेक।।2।। व्याख्याकार–डॉ० जगदीश चन्द्र मिश्र, चौखम्भा संस्कृत संस्थानः वाराणसी. पृष्ठ **43.**
8. विवेक चूड़ामणि. श्लोक **41.**
9. विवेक चूड़ामणि. श्लोक **82.**

10. 108 उपनिषद (ब्रह्मविद्याखण्ड) क्षुरिकोपनिषद मंत्र. **24.** सम्पादक–वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम आचार्य भगवती देवी शर्मा. युग निर्माण योजनाः मथुरा.
11. विवेक चूड़ामणी. **377.**
12. आत्मानात्मविवेक. **12.**
13. नीतिसार अंक (कल्याण). पृष्ठ **273.** गीता प्रेसः गोरखपुर.
14. 108 उपनिषद्. कठरूद्रोपनिषद् मंत्र **38.** सम्पादक–वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम आचार्य भगवती देवी शर्मा. युग निर्माण योजनाः मथुरा.
15. तैत्तिरीयोपनिषद्. **3/11.** गीता प्रेसः गोरखपुर.
16. सामवेद मंत्र **90.** सम्पादक–वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम आचार्य भगवती देवी शर्मा. युग निर्माण योजनाः मथुरा.
17. विवेक चूड़ामणि. श्लोक **27.**
18. वेदान्तसार. **8.**